3

भविष्य की दिशा

"क्या हैं जंगल के उपकार?
मिट्टी, पानी और बयार
जिंदा रहने के आधार!"

–चिपको आंदोलन का नारा

सड़कें, बड़े बाँध, खनन संबंधी कार्यक्रम और बहुत अधिक जंगल-कटान, ये सब पृथ्वी की स्थिरता को हानि पहुँचाते हैं। पर मनुष्य अपनी अथाह लालसा के कारण प्रकृति के संसाधनों का, जो कि बहुत ही नाज़ुक स्थिति में हैं, दुरूपयोग किये जा रहा है, जिसका अन्त नज़र नहीं आता। पहाड़ी समाजों को भी बहुत तीव्र गति से बदलाव तथा विघटीकरण का सामना करना पड़ रहा है। पुराने तरीके, जिससे प्राकृतिक वातावरण के साथ तालमेल से जीवन यापन होता था, अब विदेशी मूल्यों में बदलते जा रहे हैं तथा इससे नैतिक आदर्श तथा आचार विचार संबंधी तनाव पैदा हो गया है।

युवा पीढ़ी की सबसे प्रमुख आवश्यकता जीविकोपार्जन है। जनसंख्या में वृद्धि होने से खेत छोटे होते जा रहे हैं। साथ ही साथ संसाधनों की भी कमी होती जा रही है। इन सभी कारणों से युवा बाध्य हो गए हैं कि या तो वे मैदानी इलाकों में जाकर काम की तलाश करें, या आर्थिक साधनों की खोज में अपने ही प्राकृतिक संसाधनों का बुरी तरह से शोषण करें। इस तरह से तो उनका पर्यावरण बिल्कुल तहस नहस हो जायेगा।

लेकिन पहाड़ों के बुजुर्ग, जो कि बहुत दूरदर्शी हैं व अन्तर्ज्ञान रखते हैं, मानते हैं कि आधुनिक दुविधाओं का इस ऊँची पहाड़ी मातृभूमि में हल मिल जायेगा। उन्होंने तजुर्बे से यह सीखा है कि वे यदि वनों तथा पृथ्वी की पुकार को भलीभाँति ध्यान से सुने और उसे गहराई से समझे तो अपने जीवन को वे स्वतः ही बहुत हद तक बदल सकते हैं। विकास के नए हल, जो उन्हें स्थानीय ज्ञान व कला से मिलेंगें, जिसमें स्थानीय माल का प्रयोग होगा, उन्हें अच्छा काम दिला सकते हैं। पलायन को रोक सकते हैं। उनकी भूमि पर बढ़ते हुए विनाश तथा रेगिस्तान को थाम सकते हैं।

इस पूरे दुविधापूर्वक परिवेश का ख़ास मुद्दा है, स्थानीय संसाधनों की उपलब्धि तथा उन पर स्थानीय लोगों का नियंत्रण। यह एक सर्वमान्य विचार है कि सरकारी विभागों में बहुत तेज़ी से व्यवसायिक मान्यताएँ बढ़ रही हैं अतः वे प्राकृतिक वनों तथा पेड़-पौधों को नहीं पाल सकते हैं न उनकी रक्षा कर सकते हैं जिससे कि स्थानीय लोगों को लाभ पहुंच सके।

चिपको आंदोलन के माध्यम से १६६० तथा ८० के दशक में एक ज़ोरदार आवाज़ उठाई गई कि समुदायों के अधिकार उनके प्राकृतिक संसाधनों पर अभी भी होने चाहिये जो कि सरकार ने १०० वर्ष पूर्व समाप्त कर दिये थे। आजकल के समय में चिपको आन्दोलन एक बहुत ही महत्वपूर्ण कदम माना जाता है जिसके अन्तर्गत व्यापक तथा खुले रुप से पहाड़ी समुदायों पर बाहर से थोपे गए विकास के कार्यक्रमों का विरोध हुआ। एक जंग शुरू हुई कि व्यवसायिक लालच के कारण हो रहे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को रोका जाए। और उनका प्रबन्ध स्थानीय लोगों की आम आवश्यकताएँ पूर्ण कराने के लिए हो। इसका संचालन व नेतृत्व महिलाओं ने किया क्योंकि सरकार की क्रूर नीतियों से सबसे अधिक उन्हीं का नुकसान हुआ था।

चिपको आंदोलन में सक्रिय रहीं भागीरथी घाटी की तीन महिलाएं उन ऐतिहासिक अतीत के वर्षों में झाँकती है और चिपको आन्दोलन की महत्ता तथा इसके कारण उनकी जीवनशैली, विचारधारा तथा कार्यक्षेत्र में आए बदलाव के बारे में बताती हैं–आप हैं **सुदेशा देवी, बचनी देवी** और **विमला बहुगुणा।**

सुदेशा देवी चिपको आन्दोलन के साथ बहुत लम्बे समय से जुड़ी हैं। अपने पति तथा दूसरे गाँव वासियों के विरोध के बावजूद उन्होंनें चिपको तथा अन्य सामाजिक आन्दोलनों में अपना योगदान जारी रखा। उन्हें भली प्रकार याद है–असंख्य धरनों व जुलूसों में भाग लेना, दिल दहलाने वाली पुलिस के साथ मुठभेड़ और एक जेल की यात्रा। आजकल उनकी जागरूकता तथा शक्ति केवल एक ही तरफ लगी है कि किस प्रकार महिलाओं की चारे तथा इंधन की लकड़ी की आवश्यकताओं को व्यावहारिक तरीकों से हल किया जाय।

"चिपको में पहले हम जंगल-जंगल जाकर अपने पेड़ो पर चिपके जिनसे ठेकेदार लीसा निकालने थे। बहुत-बहुत ऐसे काम किये, जब हम (विभागीय) निलामी में नरेन्द्र नगर गये थे तो उस दिन हम जेल में डाल दिए गये।

"तो (इस बात को) हो गये होंगे सत्रह साल ...सत्रह साल पहले की बात है कि उस वक्त हमनें जंगलों में पी.ए.सी. पुलिस की लाठियां देखी परन्तु खायी नहीं। वह लगा नहीं पाये हम पर। बहुत डराया, पर हम डरे नहीं, तब ढ़ोल-बाजे के साथ पूरा गांव ऐसा चला कि... ! उस समय लोगों ने नहीं सोचा कि महिलाओं को नहीं जाना चाहिए क्योंकि जंगल जाते तो घास भी लाते थे।

अब ऐसा है कि कई बहिनें हैं, जिनको घर से ऐसे नहीं जाने देते, वह घास के बहाने ही चली गयीं। पर उस समय सब लोग जुड़ गये–मर्द, बच्चे, सब–पूरे लोग ऐसे कि पी.ए.सी. के पुलिस भी डर गयीं। एक-एक पेड़ पर पांच-पांच बहिने चिपक गयीं।

"चिपको आंदोलन में तो जेल में रहे, तो मैं थोड़ा उसके बारे में बता देती हूं। उसकी बहुत याद आती है। जिस दिन हम यहां से नरेन्द्रनगर गये थे, उस दिन बड़ी वीरता की थी, जो हमारे चिपको वाले भाई लोग हैं। पुलिस वाले, ५०० पी.ए.सी. वाले थे... तो जिस दिन नीलामी थी उस दिन हम पंहुच गये। उन लोगों ने हमें हथकड़ी नहीं पहनाई, हम अपने आप उठकर चल गये। और तब जब (हमें) वहां से गाड़ी में बैठाया, तब भी हमें डर लग रहा था, कि पता नहीं कहाँ ले जाते हैं। जब हम (गाड़ी में) टिहरी की तरफ़ घूम गये तो बिल्कुल नहीं डरे, खूब नारे लगाते चले गये। हमारे साथ नौ बहिनें थी, चार तो थी पिपलेथ गाँव की, चार रामपुर की, और एक हमारे साथ मास्टारनी थी, जानकी बहन। बस वो रामायण पढ़ती रहती थी और इस तरह हमें परमात्मा का नाम लेने का मौका मिला। घर में हम खूब काम करते हैं, माँ के घर में भी काम ही किया और जब अपने आदमी (पति) के साथ गये तब भी काम किया। और जेल में बैठे रहे आराम से! और कोई बदतमीज़ी नहीं हुई। जेल में बहुत अच्छे ढंग से हमें खाना भी मिला। हमने वहां भी आन्दोलन किया कि हमारे लिए अच्छा खाना लाओ, हमें बिस्तर अच्छा दो।

"मैंने अपने गांव में बहुत काम करवाये, जो कि महिलाओं के लिए किये। यहां जो हरियाली कार्यक्रम (हरित हिमालय) चला,

वह और गांवों में प्रधानों ने या युवक मंगल दल के लोगो ने चलाया, जबकि मैंने अपने गांव में महिला मंगल दल के माध्यम से किया। एक सुरु होता है–वह काटा हमने। तो सभी महिलाओं ने कहा कि हमसे नहीं कटता। तो मैंने कहा कि सुरु सरल होता है काटने के लिए। सुरु से दूध निकलता है और छीटें लग जाते हैं। इसलिये महिलाऐं इसे नहीं काटतीं हैं। तो मैंने कहा कि सुरु नें यह तो नहीं देखना है कि यह महिला है या पुरुष! हम औरतें तो बल्कि काम ढंग से करती हैं, और पुरुष तो जबरदस्ती से करता है।

"तब मैंने कहा मैं काटूंगी तुम्हारे साथ, सबसे पहले मैं काटूंगी। फिर एक दो महिलाओं ने हाथ खड़े कर दिये, और तब मैंने कहा जो सुरु काटती है उनको पांच रुपए ज़्यादा मिलेगा और तब सबने सुरु काटा, पांच रुपये पर ही, रुपया तो ऐसा ही है!

"उसका (सुरु का) कोई उपयोग नहीं है। तब हमने उसकी जगह पेड़ लगाये। उसको काटो और उसकी जगह पेड़ लगाओ ...ऐसा है कि वहां तो थोड़ा सूखा पहाड़ है, तो बहुत कम पेड़ लगे। पर हमने मेहनत पूरी की, तब मैंने चौकीदारी भी की। किसी ने कहा महिला चौकीदारी नहीं कर सकती, तो मैंने वहां चौकीदारी भी की। हरियाली कार्यक्रम से लोगों ने २०० रुपये दिये, उस समय हम टिहरी डाम (बांध विरोधी आंदोलन) पर भी काम कर रहे थे, और यहां भी। मैंने पूरी चौकीदारी की, मर्दों से भी घास छीनकर लायी, और यदि मेरी वहां नज़र गयीं होगी तो किसी को पता भी नहीं चला होगा कि यह पचास साल की बुढ़िया कब आयी यहां! अभी यहां, तो अभी वहां देख रहें है!

तो मैं सीधे घास को छीनकर आई (उनसे), घास अपने थे खूब। तब जब बारह हज़ार रुपये हमको वहां से मिले होंगे तो बारह हज़ार से अधिक का घास हमने काटा। सुरु काटा तो उससे लकड़ियां निकली। जो कुछ झाड़ी काटी उसकी लकड़ियां लाये घर और वहां दूसरे साल घास हुआ, तो उसकी चौकीदारी भी मैंने स्वयं औरतों से करवायी। तो इसकी वजह से मर्द लोगों को बहुत लगा कि ये तो सब कुछ अपने आप करती है!

"पहले तो हमने खूब घास काटा, पर अब समझदार हो गयीं हूं मैं कहीं नहीं जाती हूं। मेरी गाय रखी हुई है और दो बकरियां, उन्हें चरा कर लाती हूं। और उन्हीं के साथ घास लाती हूं, लकड़ी लाती हूं, और कभी कभी लकड़ी के लिए मैं नहीं जाती। जो झाड़ियों की बारीक लकड़ियां होती हैं उन्हीं को जलाती हूं और उस पर रोटी पकाती हूं।

"बारीक लकड़ियां नज़दीक ही मिल जाती हैं, अपने ही खेत में जब हम कांटे वाली झाड़ियां काटते हैं उस वक्त, और मैं अब कहीं नहीं जाती, मैं थोड़ा, थोड़ा जलाती हूं। लोग तो खूब सारे एक साथ ही जला देते हैं, लोग मुझे कहते हैं कि तुम बैठती (आराम करती) भी हो और सारा काम भी करती हो। परमात्मा यहीं सिखाता है कि ढ़ंग से काम करो तो काम बढ़ता नहीं है, और मैं अन्य बहनों को समझाती हूं कि लकड़ियों को ढंग से जलाओ। और कई मर्दों को मैं कहती हूं कि जब आप लोग कहते हैं कि हमारे पास बहुत पैसा है तो क्यों इन लोगों (महिलाओं हेतु) के लिए एक गैस नहीं ले आते? इतना ज़्यादा दूर जाकर जो फौजी लोग हैं, जो अपने आप को बहुत समझते हैं कि हमारे पास पैसा है, तो मैं कहती हूं कि

तुम कुछ नहीं हो जब तुम्हारी पत्नियों ने लकड़ियां लानी हैं। थोड़ा सा, कुछ न कुछ सुख तो होना चाहिए (पत्नियों को) जिन लोगों के पास पैसा है। बहुत समझाती हूं लोगों को।"

बचनी देवी अपनी भावभरी कहानी सुनाती हैं। बताती है कि आदवाणी के जंगलों को नीचे से आए एक बड़े ठेकेदार को नीलामी से किस प्रकार बचाया गया। उन्होंने अपनी हिम्मत तथा दृड़ता से कार्य किया। अपने सहकर्मियों की सहायता ली और सोचना शुरू किया कि पहाड़ी क्षेत्रों का विकास कैसे किया जाय।

"महिला मंगल दल के द्वारा हम बहुत सी औरतों ने काम करने की कोशिश की। हमने बहुत परेशानी उठायी। हमारे सारे गांव के लोग गये। हमने पुलिस के साथ खूब संघर्ष किया, पुलिस के डण्डे भी खायें, पेड़ों को न काटने देने पर। यहीं बात तो बता रही हूं। ऐसे! ऐसे! बहुत लोग वहां जंगल काटने आये, लेकिन हमने 'अंगवाठा' (चिपकना, हाथों से घेर कर पकड़ना) मार दिये।

"हाँ मेरा पति जंगल का ठेकेदार था। मैं अपने पति के खिलाफ रही तब मैंने जंगल बचाये। क्या बताऊं, पुलिस वाले आये तो हम सब औरतें पेड़ों से चिपक गयीं। पुलिस वाले हम पर धक्के नहीं मार सके। दो-चार औरतें और थीं मेरे साथ, लेकिन पुलिस वाले हमारा कुछ नहीं कर सके, वह खड़े रहे, देखते रहे पर उन्होंने हम पर हाथ नहीं लगाया। हम बहुत सारे थे, सारे गांव की पार्टी थी मेरे साथ, बहुत थी ६०-८० महिलायें।

"आदवाणी के जंगल से आंदोलन शुरू किया। आदवाणी का ही

जंगल बचाया हमने, और जंगल नहीं। अपने आदमी के खिलाफ रही मैं। अपना जंगल बचाया मैंने, अपनी सीमा में मैंने किसी को नहीं आने दिया, तब हमने यहां सप्ताह (श्रीमद्भागवत) की। ढोल-बाजे यहां आये। बैठकें हुई इस गांव में।

"मैंने इसके लिए राशन पानी का इन्तज़ाम किया, आंदोलनकारियों के लिए मैं राशन दुकान से लायी। करा मैंने (सामर्थ्य) जो भी किया होगा। मेरे पति तो खिलाफ थे। तब मैंने अपना अन्न बेचा। अपने हाथों का मैल (मेहनत) बेचा। जब पति खिलाफ था तो मैं मजबूर थी, असहाय थी इतने लोगों की व्यवस्था हेतु। ढोल-बाजे वाले आये, धूमसिंह नेगी, प्रताप शिखर, विजय जड़धारी आदि बहुत सारे लोग आये। तब मैंने सबको खाना खिलाया। अपने घर में मैंने किसी को भूखा नहीं रखा। मेरे पास खूब अनाज था, घी, दूध को बेचने पर जो पैसा मिला था, वह मेरे पास था। उसी से मैंने लोगों की व्यवस्था की। पर मेरे को कुछ नहीं मिला। अब मैंने तेरी मशीन (टेपरिकॉर्डर) पर ही बोल दिया है कि किसी ने मेरे को नहीं पूछा।

"आन्दोलकारियों से तो वो (उनके पति) कुछ नहीं बोले पर मेरे से वह बहुत ज़्यादा नाराज़ रहे। जब पति ठेकेदार था और मैंने उसकी लकड़ी काटनी बंद करा दी तो उसने नाराज़ तो होना ही था।

"पेड़ मेरे बचाये हुए हैं, मेरे साथ दो-चार औरतें और भी थी। एक तो जौमा देवी है इसी गांव की, मेरी ही देवरानी है, एक मेरी ननद है मूला देवी, वह भी इसी गांव की हैं, मूला, जौमा और मैं। और मेरे पीछे सारे गांव के लोग ही गये। मैं बहुत जगह गयी, बैठकों में। (दूसरे गाँव के) लोग आये। बहुत आये, बेरनी गांव के आये, गंगसार गांव के आये, पूरे तीन गांवों की महिलायें

यहां आयी। एक हफ्ते में एक दिन जरूर यहां झगड़ा होता था, पर सप्ताह १४ दिन की हुई जब सभी यहीं रहे।

"आन्दोलन हमने पहले किया, तब सप्ताह किया। तब हमने महसूस किया कि हमारा काम ठीक ठाक हो गया। जंगल के ठेकेदार भाग गये। एक दो पेड़ गिराये उन्होंने। उसके बाद हमने जंगल कटवाने बन्द करा दिये थे।

"सकलाना का एक आदमी का ठेका था। और मेरे पति ने भी ठेका ले रखा था, गोगनी और घण्डियाल के डांडो में। तब धीरे, धीरे बातें हुईं, तब हम सब इसके प्रति जागरूक हुए।

"बस, आ गया मेरे दिमाग में कि आदमी (पति) भले ही ठेकेदार है, पर मुझे जंगल बचाने ही है, देश के लिए, अपने गांव के लिए, अपने लिए। दिमाग में ही तो आता है जो आता है! मैंने अपने साथ की सभी महिलाओं को समझाया। सबको इकट्ठा किया। मैं तो अनपढ़ हूं, पर समझा दिया मैंने सबको। मेरी गांव में मान्यता थी। लोग मेरी बात को मानते थे। सभी ने मानी भी।

"हम चिपक गये, और हमें कुछ नहीं सूझा, पर उन्हें पेड़ नहीं काटने दिये। हमको भी काट लेते तो कैद उनको ही होती, हमने तो मरना ही था। जेल में तो उनको ही जाना पड़ता।"

टिहरी गढ़वाल में सिल्यारा आश्रम की **विमला बहुगुणा** ने चिपको आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया तथा उसका नेतृत्व किया। वे अपने सामाजिक कार्यक्रमों द्वारा चिपको आन्दोलन की महत्ता व भावना को फैला रही हैं व अपने विचार व्यक्त कर रही हैं। साथ ही उनका संघर्ष जारी है उस बाँध के खिलाफ़ जो कि टिहरी में भागीरथी पर जल विद्युत के लिए बन रहा है।

"वन बचाओ आन्दोलन, चिपको आन्दोलन इसकी शुरूआत भी बहिनों के द्वारा हुई, क्योंकि उन्होंने देखा कि हम लोग, जिनका जीवन जंगलों से जुड़ा है, उन्होंने पाया कि जंगल जिससे हमारा रात दिन का संबंध है सरकार उसका व्यापार करने के लिए धमका रही है, और हम जो उसके मूल निवासी हैं उसको तो उसका लाभ मिलता ही नहीं है। हमारे समय में कितने नज़दीक घास, लकड़ी मिल जाती थी, और कितनी पर्याप्त मात्रा में होती थी। लेकिन आज की पीढ़ी को तो घास-लकड़ी के लिए बहुत दूर जाना पड़ता है। देखा कि पहले इतना भूस्खलन नहीं था, अब जंगलों के कटने से, व्यापारिक वृक्ष लगने से धरती की चमड़ी छिल जाती है, वर्षा प्रलय मचा देती है। तो इस प्रकार से उन्होंने (महिलाओं) देखा कि ये वृक्ष तो हमारे संतरी हैं और हमारे जीवन प्राण हैं, इनसे हमारी मिट्टी की गुणवत्ता, इनकी पत्तियों से, इनकी जड़ों से हमारा खेती का उत्पादन बढ़ता है। चौड़ी पत्तियों के जंगलों की खाद से हमारी खेती का उत्पादन बढ़ता है। और उन्होंने कहा कि कम से कम जो खड़े जंगल हैं उनको तो अब हम कटने नहीं देंगे, और उसके लिए फिर संगठित हो गये। और उसके लिए उन्होंने गांधीजी द्वारा बताया गया अहिंसात्मक तरीका अपनाया महीनों तक डेरा लगाया और पेड़ों पर राखी बांधी। उन्होंने कहा कि तुम हमें काट सकते हो लेकिन हम वृक्षों को नहीं कटने देंगे, क्योंकि इन वृक्षों के कटने से हमारा सारा जीवन बर्बाद हो गया है।

"हमारा जो उद्देश्य था, समय समय पर अपनी समस्याओं के लिए बहनों को जागरूक करना, इसके लिए हमने इनका महिला मंडल गठित करके समय-समय पर उनकी समस्याओं के लिए साथ

दिया। हेंवल घाटी में महिलाओं ने आन्दोलन चलाया, फिर बडियारगड़ में, लासी में, खुरेत में। महिलायें दिन में सारा काम निबटा करके जुलूस लेकर आती थी और पेड़ों के सामने खड़ी हो जाती थी। लेकिन, ठेकेदार कहता था कि हम तो चांदनी रात में काटेंगे, हमने तो यह जंगल काटना ही है। तो फिर महिलाओ ने तय किया कि कुछ महिलायें, जहां जंगल काटने के लिए छपा था वहां छानियां थी, उनका वहीं निवास रहेगा, और फिर रात को जब वो कुल्हाड़ी की थोड़ी भी आवाज सुनती थी तो बहिनो को रात में वहां जाकर पेड़ों की रक्षा करनी पड़ती थी।...दिनभर हम लोगों ने एक महीने तक उन जंगलों की रक्षा की, तब जाकर हम उनको बचा सके, जब तक कि जंगल कटान के निरस्तीकरण का आर्डर नहीं आ गया।

"मेरे महिला मंडल ने बीस हज़ार गड्ढे बनाये और पेड़ लगाए। तो सब वृक्ष लगाने के लिए गये, जंगलों में तो महिलाओं ने लगाये। जो महिलाओं की आवश्यकता के पेड़ नहीं थे उन्होने कहा कि तुम (जंगलात विभाग के अधिकारियों को) इस पेड़ पौधे को क्यों लाये? उन्होंने कहा यह सजावट के पेड़ हैं। तब हमारी महिलाओं ने कहा इनको ले जाओ, तुम रेंजर साहब के बंगले में सजाना, हमें तो जंगल में जो हमारी मिट्टी की ताकत को बढ़ाये, जो हमारे पानी के स्रोत बढ़ाये जो हमारे पशुओं को चारा दें, हम तो उसको ही लगायेंगे। हमें नहीं लगाने हैं ये सब पेड़। और उन्होंने नहीं लगाया उन पेड़ों को। तो इस प्रकार जब प्रत्यक्ष रूप से महिलायें उसमें जुड़ेंगी तो फिर आगे सही वन नीति बनेगी। तो तब हमारी धरती की ताकत बढ़ेगी। महिलायें लगातार उसमें लगी हैं।

"तो इस दृष्टि से चिपको आन्दोलन की एक मुख्य मांग है कि गांव के आसपास के जितने क्षेत्र हैं तीन कि.मी. क्षेत्र जो है, गांव की आवश्यकतानुसार वहां पेड़ लगें, जहां कि बहिनों को नज़दीक घास चारा मिले। और अपनी भूमि में हमारे ज़्यादातर फल के पेड़ों के साथ-साथ चारे के पेड़ हैं। आज हमें जंगल नहीं जाना पड़ता दो पशुओं के चारे के लिए। हमारी यह कल्पना है कि हर घर के इतने चारे के पेड़ हो जाने चाहिए कि उन्हें नज़दीक घास और लकड़ी मिल जाय।

"हमारे आश्रम में यह पद्धति है कि वन संरक्षण सम्बन्धी जो हमारी दैनिक क्रियायें हैं, उनके साथ-साथ बौद्धिक शिक्षा जैसे लड़कियों के लिए भोजन बनाना और कताई आदि भी हमने रखी है। और खेती का काम, गौशाला आदि का कार्य भी साथ-साथ चलता है। हमारा नारा है जो हम सब बच्चों को सिखाते हैं:

सुख से यदि तुम जीना चाहो
हर बच्चा एक पेड़ लगाओ।

हमारे आश्रम में जितने बच्चे पढ़ते है वो खुद गडढ़े बनाकर के अपने पेड़ों को वहां लगाते हैं और उनकी रोपाई करते हैं, सिंचाई करते है। तो सहज है कि प्रकृति से जुड़े रहते हैं।

"हमारी जो असिंचित भूमि है इस पर फल के वृक्ष लगाकर, चारे के वृक्ष लगाकर, हम अपने नौजवानों को रोजगार दे सकते हैं। हमारे यहां जो संम्पदा है उसका उपयोग पानी को पंप करके, चोटियों पर पानी पंहुचा करके तब जाकर हम वृक्षारोपण करके, खेती में रोजगार देकर यहां के लोगों को यहां रोक सकते हैं।

> लेकिन आज हमारे यहां ऐसा कुछ नहीं है। जड़ी-बूटी का उद्योग, वृक्ष लगाना यह सब संभव होगा जबकि यहां की जल संम्पदा का उपयोग, पानी को लिफ्ट करके ऊपर चोटियों तक पंहुचायेंगे और चोटियों पर वृक्षारोपण करेंगे।"

चिपको आन्दोलन के संदेश ने पहाड़ी लोगों को एक नया रास्ता दिखाया और पूरे संसार में विकास संबंधी योजनाओं पर भी असर किया है। यहाँ तक की हिमालय क्षेत्र में जगह जगह, कुछ युवक वर्ग भी चुपचाप अपने बिगड़े हुए पर्यावरण को सुधारने में लगे हैं–क्योंकि वे भली प्रकार जानते हैं कि गरीबी तभी हटाई जा सकती है जब मनुष्य के संसाधनों का पुनः विकास हो, उनकी "घास, लखड़ू, पानी" जिसके लिए वे पहाड़ी क्षेत्रों में आकर बसे।

विजय जड़धारी, चतर सिंह भंडारी व **सदर सिंह परमार** नई रीती के कार्यकर्ता हैं। इनका दृढ़ विश्वास है कि जंगलों का संचालन जनता को फिर सौंपा जाना चाहिये। विकास तभी संभव है जब स्थानीय जनता को अपने जंगलों का संरक्षक बनाया जाय, वे ज़िम्मेदार बनें और अपने संसाधनों का खयाल खुद रखें। पहाड़ों में भविष्य में कैसे विकास संभव है, उसकी एक वास्तविक रूपरेखा भी उन्होने बनाई हैं।

विजय जड़धारी, जड़धारगाँव की सफलता की कहानी का वर्णन करते है:

> "पूरा वन प्रबंध गांव के हाथ में आना चाहिए। याने, वन पर जनता का अधिकार होना चाहिए। यदि जनता को हम

जिम्मेदारी सौंपे और ये कहें कि ये जंगल आपका है और इससे जो फायदा होगा घास का, लकड़ी का, पानी का वो सब आपका है तो लोग कुछ जिम्मेदारी समझेंगे और जंगल धीरे-धीरे बढ़ेगा। इसका एक नमूना यहीं जड़धार गांव का है। यहां पर लगभग ८-१० वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल पर लोगों ने जंगल पर अपना कब्ज़ा किया हुआ है। यहां पर न कोई वन विभाग वाला आता है और न उसे आने दिया जाता है। और लोगों का बचाया हुआ जो आरक्षित जंगल है, उसमें आज लाखों पेड़ बांज, बुरांस, काफल, अंयार के खड़े हैं। और वो जंगल इतना सघन हो गया है कि यदि जंगल में चले जाएं तो कहीं भी इधर-उधर दिखायी नहीं देता। बिल्कुल शत-प्रतिशत जंगल की छाया दिखायी देती है। इस जंगल को बनाने में गांव वालों को कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ा है, पेड़ भी नहीं लगाने पड़े हैं; सिर्फ उसका संरक्षण पशुओं से व लोगों से किया गया।"

चतर सिंह भण्डारी, हेंवल घाटी के कुड़ी गांव के एक अत्यन्त प्रभावशाली कार्यकर्ता हैं:

"कुछ बांज का जंगल तो है जो 'हरित हिमालय' कार्यक्रम के अन्तर्गत लगा है। उसमें घेरबाड़ भी किया है। हरियाली का जो कार्यक्रम हुआ या चिपको आन्दोलन का तो उसके अन्तर्गत पेड़ पौधे लगाने व घेरबाड़ का काम किया गया।

"जागृति तो कुछ लोगों में बहुत है, इसमें विशेष रुचि तो श्री धूमसिंह नेगी जी की रही है। हालांकि गरीब हैं पर उनकी आत्मा

बड़ी शुद्ध है, भावना शुद्ध है। इनके माध्यम से कार्य चला।

"प्रभाव तो भूमिकटाव से अवश्य पड़ता है क्योंकि जंगलों के खाली होने से, अवरोध नहीं हो पाता। बड़े वृक्षों और झाड़ियों से भरे जंगल में पानी का रुकाव होता है, पेड़ों की जड़ मिट्टी को पकड़कर मजबूत हो जाती है। ...हमारे बीच जंगल होंगे तो इनसे पानी की प्राप्ति हो सकेगी। पानी से ज़मीन फिर सिंचित होगी, तब हमारा कारोबार (खेती का काम) भी चल पायेगा।

"गांव में युवक मंगल दल व महिला मंगल दल हैं। यदि ये देखरेख करें तो बहुत अच्छा रहेगा। बाहर का कर्मचारी जो भी हो वो उतनी चौकीदारी नहीं कर सकता है जितना कि नज़दीक का व्यक्ति कर सकता है। गांव के जंगलों को बचाने का कार्य गांव का ही पुरुष या महिला कर सकती है।

"संस्था अच्छा काम कर पायेगी, सरकार नहीं। सरकार से नियंत्रण नहीं हो पा रहा है। संस्था पर अधिकार आयें तो ज़्यादा काम कर सकती है।"

विशाल मणी झल्डियाल ने डेब गांव, टिहरी गढ़वाल, में एक वन उगाया है:

"कुछ तो हम अपने माध्यम से कर रहे हैं जैसे पेड़ आदि अपने खेतों या किसी जगह पर लगाना, कुछ ग्राम सभा के माध्यम से और कुछ सरकार के सहयोग से। जंगलात विभाग के सहयोग से बीज या पौध हमें मिलती हैं और हम लगाते हैं, इसमें सरकार यहां तक कि मज़दूरी भी देती हैं। ...अपने व्यक्तिगत वनीकरण जो हैं वे तो अच्छे हीं हैं क्योंकि उसमें व्यक्तिगत निगरानी अपनी

जो होती है वो दूसरे से नहीं होती है। क्योंकि सामूहिक जंगलों में तो चौकीदार नहीं होते हैं। कहीं होते भी हैं तो वे दिलचस्पी से निगरानी नहीं करते हैं। तो अपने लगाये हुए पेड़ व अपनी निगरानी ठीक होती हैं।...जहां सुरक्षा है और हम लोग भी, याने जनता भी सहयोग देती है, वहां तो ठीक है, लेकिन जहां जनता भी ये सोचती है कि सरकार ही इसकी निगरानी करे वहां तो फिर खत्म ही समझो। यदी सरकार का भी और जनता का भी सहयोग हो तो वहां पर ये जंगल ठीक हैं।

"अभी भी वे प्राकृतिक वन जीवित हैं और अच्छी हालत में हैं–बजाय अब इसमें ये अन्तर है कि जंगलात विभाग बीज, पौधे और जंगल बनाने का प्रयास करके लाखों रुपये इसमें खर्च हो रहे हैं, तो भी इतनी खूबी नहीं है जो कि प्राकृतिक जंगलों की है। ...इन पौधों को लगाने में जंगलात विभाग हज़ारों, करोड़ों रुपये खर्च करे इसके बजाय प्राकृतिक जंगलों पर नियन्त्रण रखें तो प्रकृति अपने आप जंगलों को बना दे। तो प्राकृतिक जंगलों की सुरक्षा सही ढंग से हो बजाय इन कृत्रिम वन (लगाने को)। वे कुछ न करें, अरबों का खर्च न करें बल्कि सख्ती से निगरानी रखे, तो जंगल अपने आप प्रकृति जंगल बना सकती है।"

जगत सिंह चौधरी अलकनंदा घाटी के महान व्यक्ति हैं। वे पिछले २० वर्षों से अपने क्षेत्र में मिश्रित वन लगाने के प्रयास कर रहे हैं। उन्हें किताबों व विज्ञान में विश्वास नहीं। वे एक स्वयं-निर्मित व्यक्तित्व हैं। उनके तथा उनके पूर्वजों के वास्तविक अनुभव ही उनके ज्ञान के आधार हैं। उनका काम ही उनका दर्शन है।

"लगभग २० साल हो गये हैं। १६७३-७४ में मैंने पेड़ लगाना शुरू कर दिया था। १६७३-७४ से, अपने पिताजी की मृत्यु के पश्चात, मैंने यह कार्यक्रम उनके बताये अनुरुप शुरू किया। .. .उन्होंने मरने से पहले बताया कि 'बेटा! जो हमारी बंजर ज़मीन है उसे चलता (चालू) कर देना'। अब मेरे साथ एक समस्या थी कि जिस ज़मीन पर कुछ भी नहीं हो रहा है उसे बिना पानी के मैं कैसे ठीक करुं? मैंने एक ही बात सोची कि वहाँ की जो प्राकृतिक वनस्पति है पहले उसी का संरक्षण किया जाय। उसके बाद वहां पेड़ पनपने शुरू हुए। धीरे-धीरे घास हुई। आज वहां मै ५६ प्रकार के पौधों (प्रजातियों) को पनपाने में सफल हुआ हूं। ...बिल्कुल अपनी नापलेण्ड है। सरकार अपनी ज़मीन में तो कुछ करने नहीं देती है।

"विज्ञान की किताब कुछ भी कहे, उस पर मेरा ख़ास विश्वास नहीं है, क्योंकि मैं कोई किताब पढ़कर पेड़ नहीं लगा रहा हूं, न ही मैंने कोई प्रशिक्षण लिया, न ही किसी का दिशा निर्देश था। मैं स्वयं धरातल पर काम कर रहा हूं, और मैंने यह प्रयोग करके देख लिया है कि एक ही जगह पर बांज, देवदार, बांस, सुरई, अंगू, चीड़, भीमल, तिमला व शीशम आदि सभी हो जायेंगे, यदि मनुष्य में कुछ करने की भावना हो तब। मैंने ३००-४०० काफल के पेड़ो का सरंक्षण कर रखा है। पहाड़ से काफल का विनाश हो रहा है। कहीं काफल खाने को नहीं मिल रहे हैं, उनका संरक्षण हो। मगर संरक्षण हो रहा है चीड़ का–अब बतलाइये आप। अब २०-५० साल के बाद हमें ज़मीन नहीं मिलेगी, मिट्टी नहीं मिलेगी, मिलेंगे सिर्फ पत्थर ही पत्थर।

"हां, शुरू में तो काफी दिक्कत थी, लेकिन वह भी झेली। गांव वालों ने सहयोग दिया, उन्होंने कोई नुकसान नहीं पंहुचाया। वे देखते रहे मैं काम करता रहा। मैं गांव वालों का व क्षेत्र वालों का सहयोग कहूंगा कि उन्होंने कोई नुकसान नहीं किया। आज तो घर के लोग खुश हैं, लेकिन २० वर्ष पहले, जबकि मेरी उम्र भी थी, मां जी व पत्नी चाहते थे कि मैं नौकरी करूं, इस पागलपन में न पड़ूं। मेरे पास जो भी थोड़ा बहुत धन था वह भी मैंने वहां लगा दिया। तन, मन, धन, से वहीं लगा रहा।

"कोई आर्थिक फण्ड नहीं लिया न ही कभी इस पर सोचा। मेरे पास जो कुछ भी था वह मैंने लगा लिया है। आज मेरे पास ३०-४० हज़ार पेड़ हैं–सुन्दर हैं! आर्थिक फण्ड क्या करता है?

"सरकारी अधिकारियों की तो किताबों की सोच थी कि उस ऊंचाई पर अमुक प्रजाति के साथ अमुक प्रजाति नहीं हो सकती है। जैसे बांज और बांस, देवेदार व शीशम आदि प्रजातियों का कोई मेल ही नहीं है। आजकल थुनैर व टीक पर मैं प्रयोग कर रहा हूं।

"बस मेरा तो एक ही दृष्टिकोण रहा है। प्रयोग की बात तो मैं नहीं कर सकता हूं। सीधी सी बात है कि पेड़ों से मेरा प्रेम रहा और मैं चाहता हूं कि ज़्यादा से ज़्यादा किस्म के पेड़ लगाये जाये। अभी ५६ प्रजातियां हैं।

"दरअसल मैं एक मिश्रित वन की बात करता हूं। हमारे पहाड़ों में मिश्रित वन पनपाये जांय। अब मेरे गांव के लोग चीड़ के अलावा अन्य क्या जान सकते हैं–सम्पूर्ण जंगल चीड़ के ही हैं। देवदार मेरे गांव वालों ने कहां से देखना है। इसलिये हमें देवदार

को लगाने का प्रयोग करना पड़ेगा, ताकि मेरे गांव वालों को देवेदार देखने के लिये जोशीमठ या अन्य जगह न जाना पड़े। हर चीज़ के पेड़ लगें। चारा पत्ती के पेड़, इंधन के पेड़ व ज़मीन को जकड़ कर रखने वाले पेड़ जब लगेंगे, भूस्खलन रोकने वाले तथा फलों के पेड़ जब लगेंगे, तब इन सब को मिलाकर चारा घास, जड़ी-बूटी, ये सभी चीज़े एक जगह पर हो जांय तो पहाड़ की काया पलट हो जायेगी।

"फिर एक बात तय है कि मिश्रित वन होने ही चाहिए। जंगल में प्रत्येक प्रकार के पेड़ हों, चारा वाले हों, इंधन वाले हों और ज़मीन को नम रखने वाले पेड़ भी हों। बांज, काफल, अंयार, बुरांस, हमारी ज़मीन को नम रखेंगें तथा उनकी पत्तियों से जैविक विविधता वाली मिट्टी तैयार होगी। फलों के पेड़ भी हों और इमारती लकड़ी वाले पेड़ भी हों, और मुख्य रुप से पर्यावरण को स्वच्छ रखने वाले पेड़ हों, चौड़ी पत्ती वाले। बाकी उद्योग के लिये रामबांस, बांस, रिंगाल लगें। घास और इनके अलावा बेलें लगें। बेल तो मुख्य रुप से चारे का सबसे बड़ा स्रोत है। एक बार घास वाली बेल बो कर साल भर घास प्राप्त किया जा सकता है।

"जैव विविधता की जो बात आज हो रही है वह बड़े-बड़े कार्यक्रमों में हो रही है। रेड़ियो में भी हम सुन रहे हैं। अख़बारों में भी छप रही है। लेकिन मैं तो एक बात कहूंगा कि जैवविविधता की बात आप कर रहे हैं वह कागजों तक ही क्यों कर रहे हैं? धरातल पर क्या यह हो रही है? चीड़ के पत्तों से अगर तुम जैवविविधता की बात करोगे तो वह हमको कहां पहुंचायेगी? पेड़ तो हम लगायेंगें नहीं और जैवविविधता चाहिये हमको। क्योंकि

प्रत्येक पेड़ के पत्ते में अलग अलग गुण होते हैं और प्रत्येक पत्ते में प्रत्येक तत्व तो हैं नहीं, इसलिये हमें कई किस्म के पत्ते चाहिये। प्रश्न यह है कि जब हमारे पास विविध प्रकार के पत्ते ही नहीं हैं तो क्या जैवविविधता होगी?

"पर्यावरण और विकास को जब तक हम एक साथ नहीं जोड़ेंगे, तब तक सही विकास की बात नहीं की जा सकती है। नई पीढ़ी की जो सोच है वह कह रही है कि 'तुम पर्यावरण की बात तब करो जब पहले हमारे पेट का पर्यावरण ठीक करो'। सवाल तो आज उनके पेट का है। बेरोज़गारी का है। आर्थिक साधनों का है। बहुत बड़े पर्यावरण की अगर हम बात करेंगे तो वे आगे नहीं आयेंगे और न आ रहे हैं। वे तब तक आगे नहीं आयेंगे जब तक आप प्राकृतिक पर्यावरण के साथ-साथ उनके पेट के पर्यावरण को जोड़कर नहीं देखेंगे। वरना पर्यावरण सिर्फ पेड़ लगाने तक सीमित होगा–अब तक तो पहाड़ में अरबों पेड़ लग चुके हैं। पहाड़ में कागज़ों में इतने पेड़ लग चुके हैं, कि यहां खेत व मकान भी नहीं रहने चाहिये थे। लेकिन धरातल पर आप भी देख रहें हैं और मैं भी देख रहा हूं, एक भी पेड़ नहीं है।

"और इसके लिए हमारे पास बहुत अच्छी कार्य योजना है कि आप पेड़ अवश्य लगाओ, क्योंकि पेड़ पर्यावरण का मुख्य घटक हैं लेकिन ऐसे पेड़ों पर भी ध्यान दो ताकि आय प्राप्त हो। माना भीमल है, पत्ते घास के काम आ सकते हैं, उसके रेशो से रस्सियाँ, झोले आदि बन सकते है, शैम्पू बन सकता है। अरमोंड़ा (एक झाड़ी) का रस खुबसूरत बनने का सबसे अच्छा साधन बनाया जा सकता है। पेड़ आर्थिक उन्नति कर सकें, कुटीर उद्योग

पनप सकें। पेड़, घास, जड़ी-बूटी, बेलें आदि हों, तो क्या विकास नहीं होगा? स्वच्छ विचार भी हों।

"आज जब मेरे पास पत्ते हैं, मैं पेड़ को दे रहा हूं। घास लोगो को दे रहा हूं। कोई नुकसान की बात नहीं है। विषम परिस्थिति में पेड़ के बहुत दुश्मन हैं।

"नयी पीढ़ी को सबसे पहले यथार्थ पर खड़ा होना चाहिए तथा उन्हें सोचना पड़ेगा कि आदिमानव का जन्म जंगल में हुआ है और जंगल ही मानव के परम मित्र हैं तथा सुख दुःख के साथी है। उन्हीं जंगलों में वह बड़ा हुआ। आज हमें यह बात बहुत गर्व से कहनी चाहिए कि 'हम आदिमानव की जंगलो में रहने वाली जंगली संतान हैं।' यही हमारा यथार्थ है। आज ऊँचे-ऊँचे भवनों में बैठकर पर्यावरण की बात हो रही है लेकिन कोई जंगली की परिभाषा देने का राजी नहीं है। जंगली की बात करो तो यह असभ्य है। कि भौतिक वादी मानव के कदम आधारहीन भौतिकता की तरफ जब पड़े तो उसने जंगली शब्द को असभ्यता की संज्ञा दे डाली और आज अपने जीवन पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। क्यों बात कर रहे हैं ये पर्यावरण की? जंगली बनने के लिए तो ये तैयार नहीं हैं। यह मेरा मानना है कि जब तक मानव जंगली नहीं बनेगा तब तक जंगल नहीं बनेंगे और जब तक जंगल से नहीं जुड़ेगे तब तक पर्यावरण की बात नहीं कर सकते। पर्यावरण की बात जंगली आदमी ही कर सकता है।

"एक ही स्वार्थ है कि यहां का पलायन रुके। यहां के लोगों में आत्मविश्वास का विकास हो। यहां की महिला में आत्मविश्वास पैदा की जाए, ये ही स्वार्थ है। हमारे आत्मविश्वास और

आत्मनिर्भरता का विकास होगा। जंगलो में आम आदमी को मोह (प्रेम) होगा।"

सकलाना में पुरागाँव के **बिशेश्वर दत्त सकलानी** बताते हैं कि किस प्रकार अकेला व्यक्ति भी परिवर्तन ला सकता है।

"ऐसा है कि हमारे यहां सबसे पहले श्री मथुराराम की शादी में एक देवदार की पौध, पत्थर का धारा (पानी के स्रोत हेतु), पत्थर की ओखली दहेज में आयी, ...तो एक प्रेरणा यह मिली थी। दूसरी प्रेरणा यह थी कि हमारे यहां जंगली इलाका था, आने-जाने के साधन नहीं थे, तो बीज के पौधे होते थे, सेब, नाशपाती का यहां नाम ही नहीं था। राजा के बगीचे में होते थे, हमें मालूम ही नहीं था। मेरे ताऊ का लड़का, मेरा बड़ा भाई उस समय पटियाला में माली का काम करता था। मेरे पिताजी ने भी वहां माली का कार्य किया है। तब टांक बोया, उस पर सेब की कलम लगायी, मोल बोया और उस पर नाशपाती की कलम लगायी। चिकनी मिट्टी और बेल से उसको बांधते थे। इन चीजों को मैं बड़े चाव से देखता था, दूसरी प्रेरणा वहां से मिली, यह तो मेरी सुख शांति का है।

"वृक्षों की आत्माओं का बल मुझे मिला है। यह ज्ञान वृक्षों ने दिया है, अब मैं ७६ साल का हूं। जब यह हुआ कि सारे गांव से सबसे बूढ़े को आगे बुलाया जाय तो बूढ़ा ही नहीं मिला! मैं अपने आप को बूढ़ा नहीं समझता हूं, क्योंकि मैं आज सुबह भी पूरा कार्य करके आया हूं! मेरे पास कुटला, गैंती, देवदार की पौध

है। तीन किलो की गैंती से मैं आज भी ७६ साल में इतिहास की कहानी लिख रहा हूं। अर्थात् धरती मेरी किताब है, और तीन किलो की गैंती मेरी कलम है, पेड़ों के मोटे-मोटे तने किताब के पन्ने हैं, टहनी शब्द है, और पत्ते स्वर हैं। हिन्दी में स्वर १२ होते हैं, पर प्रकृति में जितने प्रकार की वनस्पति है उतने ही प्रकार के स्वर हैं। अगणित स्वर हैं, अगणित भण्डार हैं। मुझे इस समय योग-वियोग, सुख-शांति और जो ज्ञान इन पेड़ों से मिला है वह (अन्य) आदमियों को नहीं मिल सकता। और यहां तक कि वृक्षों की आत्मा और मेरी आत्मा एक हो गयीं है।

"परन्तु पेड़ तो किसी का नहीं होता है। वह तो भूखों को भोजन देता है, प्यासे को पानी देता है, फल के रुप में आहार देता है। पशु-पक्षियों को छाया देता है, और राहगीर का गृह है, और निराशों को आशा देता है। देश-विदेश के सभी प्राणियों को विश्राम देता है। वन विभाग वाले इस चीज़ को नहीं समझे, बल्कि उन्होंने सोचा कि (मैं) अपने ख़ातिर इस जंगल को बना रहा है।

"बल्कि बेरोजगारी दुनियां में है। अगर मेरे विचारों के अनुसार या पेड़ों के मुताबिक काम करो तो सारी दुनिया के लिए रोजगार है। अगर हमने ऊपर के जंगल से सीधी लाइन एक मीटर चौड़ी बना दी और वहां वे पेड़ लगाये जाय, औषधि और अनाज भी बो दिया जाय, फिर १५ फीट नीचे दूसरी पट्टी बना दी... ऐसे करते हुए हम यहां नदी में आ पहुंचेंगे। नदी के आर पार को हम इस तरह पहाड़ की चोटी से मिला सकते हैं। फिर जो पानी बरसात में आयेगा, वह ठहरता हुआ आयेगा, कटाव नहीं होगा, उसमें रेत पत्थर नहीं आयेगा। पानी भीतर ज़मीन में चला जायेगा

और साफ बन जायेगा। पेड़ों की दो प्रकियाएं हैं, हवा से पानी लेना और ज़मीन में पहुंचाना, और ज़मीन से पानी लेना और हवा में पंहुचाना। जितने बड़े पेड़ होंगे उतना ही ठंडा (वातावरण) होगा, तो बादल उसी तरफ आयेंगे, अर्थात् यह जंगल बादलों का मायका बन जायेगा।

"जिस समय यहां बिल्कुल खाली था, तब मैंने इसमें खड्ढे बनाये, और अखरोट के पेड़ लगाये हैं। परन्तु अखरोट के पेड़ को गांव के नज़दीक खाद मिलता है, इसलिए होते हैं। जब उनकी देखभाल नहीं होती तो वे सूख जाते थे। उस समय एक-दो पेड़ थे बांज के, जो बीज देते थे, तब मैं उन बीजों को बो करके पेड़ उगाता था। परन्तु अब तो कम से कम एक दो कट्टे बांज के बीज होते हैं। पहले तो मैंने तीन पेड़ लगाये, ब्रहमा, विष्णु और महेश और तीन बीज बोये, तीन देवताओं का ध्यान करके। जब तीनों जम गये तो वहां से दो उखाड़े और दूसरी जगह लगाये, और एक वहीं पर रहने दिया। फिर मैंने सोचा कि अगर मैं पेड़ लाइन के द्वारा लगाऊंगा–तो मैं यहीं पर रह जाऊंगा। जबकि मुझे एक उदाहरण पेश करना चाहिए, अब भी पेड़ लगा रहा हूं, ज़्यादा से ज़्यादा हिस्से पर पेड़ लगाने चाहिए।

"यहीं नहीं है, गांव के ऊपर भी पेड़ लगाये हैं। वहां पर वन विभाग वाले कब्ज़ा करने लगे थे तो गांव वालों ने कहा कि हमारा गौचर है, तो मैंने कहा कि उनको (वन विभाग) जवाब दे दो कि हम वहां अपने आप पेड़ लगायेंगे। फिर सन् १९८८ से गांव की दूसरी तरफ निराला (खाली जगह) है वहां पेड़ों के तने (ठूंठ) थे, उनके अब पेड़ बन गये हैं। छोटे-छोटे पौधे भी हैं।

"अब तो यह मेरे परिवार के लोग बहुत अच्छा मानते हैं। पहले तो उनको इस चीज़ का ज्ञान भी नहीं था। इतना तक हुआ कि वैशाख माह में बांज खूब फैल रखा था, तो घर वाले एक टहनी काट करके ले गये। मैंने जब देखा तो घर में पूछा, तो इन्होंने कहा कि मुझे देर हो रही थी इसलिए मैं काट करके लायी। तो मेरे को धक्का (सदमा) लग गया कि मैं पेड़ों को अपना बच्चा समझता हूं, और ये तुम्हारे भी बच्चे है। तो मैंने कहा कि अगर तुम्हारा बच्चे का गला कोई काट देगा, तो? यह सुनकर वह (पत्नी) रो गयीं।

"मैंने यह उनको समझाने के लिए कहा कि मेरे को पेड़ों से उतना प्रेम है। इतना (प्रेम) तो यह बच्चे भी नहीं देंगे जितना कि ये पेड़ देंगे। पेड़ इस संसार को भी सुख देंगे, पक्षियों को भी सुख देंगे, मनुष्यों को भी सुख देंगे। जो भी जायेगा सुखी होगा, तुम्हारे बच्चे इतना नहीं कर सकते। परन्तु बाद में वह समझ गयीं।"

क्योंकि हिमालय के समुदाय छोटे हैं वे आत्मनिर्भर हैं तथा अपनी मिट्टी, पौधों व पेड़ों के प्रचुर मिश्रण को पहचानने में वे दक्ष हैं। यही कारण है कि उनकी सभ्यता एवं संस्कृति को स्थायित्व बना हुआ है। विशम परिस्थितियों व कठिन इलाके में रहने के कारण वे बहुत साहसी व बदलाव के साथ बदलने को हमेशा तत्पर रहते हैं लेकिन साथ ही यह भली प्रकार से जानते है कि पहाड़ी लोगों के जीवन का आधार है प्रकृति के प्रति आदर। यहां विकास का मतलब मैदानों की अपेक्षा एकदम फ़र्क है। और पहाड़ों में हर जगह बुद्धिमान पुरुष व महिलाएं हैं जो अपने संचित ज्ञान के आधार पर अनुभवों को बांटना चाहते हैं। वे जानते हैं कि उनके बिगड़ते

हुए परिवेश व वातावरण को किस तरह बचाया जा सकता है, और उनके प्राकृतिक इतिहास का रुख बदला जा सकता है एवं इसी के साथ-साथ यहां के वासियों का भविष्य भी।

धूम सिंह रावत (५७ वर्ष) अलकनन्दा घाटी में चंद्राडूँगी गाँव के निवासी हैं। वे बहुत दूरद्रर्शी, विकासशील व्यक्ति हैं, तथा उपयोगी विचारों के साथ प्रयोग करने की सदैव तत्पर है।

> "घर आकर मैंने एक योजना बनायी, क्योंकि मैंने एक दार्शनिक की पुस्तक पढ़ी थी कि '*पेड़ लगाओ*'। फलदार पेड़ व इमारती लकड़ी भी पेड़ से मिल सकती है। उस पुस्तक में मैंने पढ़ा की संसार में प्रत्येक जीव जो भी कुछ कर सकता है, अपने औलाद के वास्ते, करता है—ज़मीन जायदाद, धन संग्रह आदि सभी अपनी संतान के लिए करता है। परंतु होता यह कि आजकल अंत में संतान माँ-बाप को ठुकरा देता है। तो पेड़ ऐसी चीज़ है कि अगर आप उस पर पत्थर मारेंगें तो वह पत्थर मारने के बदले फल देगा। तुम्हें धोखा नहीं दे सकता।
>
> "पर्यावरण की जहां तक बात है तो फलदार वृक्ष हों या छायादार वृक्ष, उसमें बांज सबसे उपयोगी वृक्ष है। मैंने लगभग दो सौ पेड़ लगा रखे हैं। आम, अमरुद, केला, नीबू प्रजाति के वृक्ष लगा रखे हैं।मैं (ढकरानी) देहरादून जाकर पौधे लाया। अगर व्यक्ति अपने स्तर से कुछ प्रयास करे तो अवश्य पहाड़ का कुछ विकास हो सकता है। १९६० से पहले पिथौरागढ़ कुछ भी नहीं था। आज पिथौरागढ़ में फलों के सर्वाधिक बगीचे हैं। हिमाचल १९६० से

पहले कुछ भी नहीं था और आज पेड़ों (सेब आदि) के कारण हिमाचल का विशिष्ट स्थान है। वहां एक छोटा किसान भी सेब आदि से धन अर्जित करता है। पहाड़ में ज़्यादातर देवदार, तुन, बांज, अखरोट आदि लगाए तो धन की समस्या भी हल हो सकती है। कश्मीर में मैंने देखा कि अखरोट की लकड़ी एवं अन्य लकड़ी से विभिन्न प्रकार का सामान बनाया जाता है।

"राजस्थान जैसी जगह जहां पीने के लिए पानी नहीं है। मैदानों में पर्यावरण दूषित है। पहाड़ में फिर भी स्वर्ग है। लेकिन यह स्वर्ग तभी रह सकता है जब हम पेड़ लगाए और वनों को पनपाए। मैं तो यह कहता हूँ कि पेड़ काटने का अधिकार उसी का है जो पेड़ लगाए, और उसे पेड़ काटने का कोई अधिकार नहीं है जो पेड़ नहीं लगाता। वन अधिनियम भी कई मामलों में सही है। लेकिन कुछ परिवर्तन उसमें होना चाहिए।

"गांव में लोग कच्ची लकड़ियां काटते है। अगर यह कच्ची लकड़ी काटनी बन्द हो जाए तो वन सुधर सकते हैं। गांव में पहले दस परिवार थे और आज १०० परिवार हो गए, लेकिन हक-हकुक तो १० परिवारों के बराबर ही है। उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। इसलिए भी जंगल में चोरी होती है।

"वह बंद इसी तरह हो सकती है कि लोग अपने खेती में वृक्ष लगाए। इमारती वृक्ष स्वयं उगाए। जंगल से केवल बढ़े वृक्ष काटे जाएं। केवल वन विभाग ही इसका निरीक्षण करें। वन कानून जो कि अंग्रेज सरकार के समय का बना हुआ है उसमें कोई भी संशोधन भारत सरकार ने नहीं किया है। वन कानून में संशोधन किया जाना आवश्यक है।

"साथ ही चीड़ के एकल प्रजाति के वनों को मिश्रित वनों में बदलने की आवश्यकता है। चीड़ जंगलों के बजाय अच्छे तो अखरोट के जंगल लगाओ, चीड़ तो शुष्क पेड़ है। उसके नीचे अन्य प्रजातियों को पनपाने में संघर्ष करना पड़ता है, जंगल बनाना आवश्यक है।

"खेती से तो वर्षभर का अनाज पैदा हो जाता है। लेकिन झुकाव ज़्यादातर पेड़ लगाने पर है। अभी मेरा विचार है कि यहां पर आम और अंगूर का बगीचा लगाऊं। वृद्धावस्था के लिए फलदार वृक्ष ही साथ देंगे। अगर लोग सामूहिक बगीचा लगायें तो ज़्यादा अच्छा होगा।

"खेती अच्छा धंधा है, क्योंकि यह अपना कार्य है। अपने काम में अगर कोई ज़्यादा मेहनत भी करेगा तो महसूस नहीं होता है। हमारे क्षेत्र में जगत सिंह जैसे लोग अगर सभी इलाकों में हो जाय तो पहाड़ की काया पलट सकती है।

"हमारे गांव के पास ही एक नाला बहता है। मैंने तो कई बार अपने जन प्रतिनिधियों को कहा है कि इस नाले पर मत्स्य पालन करवाएं। इसी नाले पर अगर एक छोटा सा बांध बनाया जाय तो हमारे इस पूरे इलाके को बिजली प्राप्त हो सकती है।

"अगर उत्तराखण्ड अलग बन गया और प्रतिनिधि जागरूक होंगे तो विकास कैसे नहीं होगा। हमारे पास क्या सम्पदा नहीं है? नेपाल की सीमा से कालसी (हिमाचल) तथा मैदानी क्षेत्र के बीच में काफी सम्पन्न क्षेत्र हैं। हमारे पास वन तो हैं। जड़ी-बूटियों के कारखाने लगा सकते हैं। हम यहां पानी से बिजली पैदा कर सकते हैं। टिहरी बांध, श्रीनगर में उत्यासू बांध आदि की जगहों पर छोटे-छोटे बांध बनाकर बिजली पैदा की जाय।

"नयी पीढ़ी के लड़कों को पढ़ने के साथ ही साथ अपनी खेती का कार्य भी करना चाहिए। नैनीताल के गरम पानी क्षेत्र से सब्जियां यहां तक आ रही हैं। नयी पीढ़ी को वास्तविक विकास के लिए सोचना चाहिए।"

नीती घाटी में गमसाली गांव के **इन्द्र सिंह फोनिया** मानते हैं कि हिमालय के जंगलों व वनस्पति का संरक्षण ही विकास की कुंजी है।

"हमारे गांव में बहुत कमियां हैं। जैसे अन्य जगहों पर फलों का उत्पादन हुआ है, वैसा हमारे गांवों में नहीं हो पाया है। हम लोग ऊपर (चारागाह) मई में जाते हैं, तब सेब की पौध हमें मिलती नहीं है। अगर हमको उचित रुप से पौधे मिलें तो बागवानी में हमारी स्थिति अच्छी हो सकती है। अगर हमारे खेतों के लिए पानी की व्यवस्था हो तो हम अपनी पैदावार बढ़ाने में सफल होंगे, तब हम कुछ तरक्की कर पायेंगे।

"उद्यान विभाग हमें मई जून में सेब की पौध उपलब्ध कराये। जब हमको पौध मिलेगी तभी हम लगा पायेंगे। जहां हमारी खाली ज़मीन पड़ी है वहां हम बगीचे लगायेंगे। हमारी घाटी में कैलाशपुर जेलम आदि गांवों में फल उत्पादन में काफी तरक्की की है। जेलम व कैलाशपुर में सेब व चुलू मुख्य फल हैं। चुलू तो बहुत पुराने ज़माने से वहां पर होता है। अब सेब भी बहुत अच्छा होता है। चुलू का तो पेड़ हमारे गांव में भी है। दो-तीन साल पहले एक परिवार ने सेब का बगीचा लगाया था। काफी अच्छे सेब पनप रहे हैं उनके।

"पर्यटन तो हमारे पहाड़ी समाज को कुछ परिवर्तित ज़रूर करेगा, तथा कुछ हमारी आर्थिक स्थिति भी मज़बूत होगी। जहां तक बड़े-बड़े पहाड़ों के ऊपर ट्रैकिंग का प्रश्न है, मेरे ख्याल से ये ट्रैकिंग ज़्यादा नहीं होनी चाहिए, क्योंकि हर साल ग्लेशियर (जो कि पानी के स्रोत हैं) पीछे हट रहे हैं। सन् १६६० में जिन ग्लेशियर को हमने देखा, आज वे कई मीलों पीछे चले गये हैं। इस ट्रैकिंग का बुरा असर हमारे ग्लेशियर पर पड़ रहा है। और इसका बुरा असर हम पहाड़ी लोगों पर ही नहीं बल्कि पूरे देश पर पड़ेगा, जहां यहां का पानी बहकर जाता है और खेतों में सिंचाई करता है। इन पर प्रतिबन्ध लगाया जाना आवश्यक है। भले ही आज शौक के कारण, अध्ययन के कारण जा रहे हैं, पर इसको बन्द करने में ही फायदा है।

"नन्दादेवी नेशनल पार्क निचले जोशीमठ इलाके में है। सरकार ने जो बकरियों को पार्क में जाने से रोका है, चाहे वह फूलों की घाटी हो, या नन्दादेवी नेशनल पार्क है, बकरियों को रोकना प्राकृतिक सम्पदा को नुकसान पहुंचाना ही होगा। बकरियों के न जाने से वहां कुछ अवांछनीय घास भी ज़्यादा उग गयी है। वहां के जानवरों को मारने पर रोक लगाना उचित है। बुग्यालों में बकरियों का जाना फायदेमंद है। नुकसान कम है व फायदा ज़्यादा है। कुछ नुकसान तो होता होगा पर वे कुछ देन (लाभ) भी देती हैं। फूलों की घाटी मे ऐसा घास उग आया है जो बिल्कुल बेकार है, फूल इत्यादि सब समाप्त हो गये हैं।

"ऊपरी इलाके में तो भोजपत्र, देवदार, रैंस, यही पेड़ विशेषकर थे। हमारी घाटी में सबसे ज़्यादा जंगल है रेंवल के निकट। उसे

तो कटने से बचाना पड़ेगा, क्योंकि अब सड़क पंहुच गयी है, अतः अब ज़्यादा कटेगा। जहां तक घमसाली आदि गांवों का प्रश्न है वहां पर इंधन के अन्य साधन भी लोगों ने अपना लिए हैं, तथा पशु भेड़, बकरियां कम होने से अच्छा जंगल पनप रहा है। चारों तरफ दीवाल बन्दी तो गांव वालों ने की है, लेकिन २५ सालों में वहां स्वतः ही अच्छा जंगल पनप गया है। शायद अगले २५ सालों में तो वह बहुत अच्छा जंगल होगा, अगर कटे नहीं तो। जहां पर पेड़ नहीं उग पाते हैं वहाँ पर देवदार व चूलू के बीज बो दिये जाएँ तो बहुत अच्छा जंगल होगा। जैसे बद्रीनाथ में इन लोगों ने प्रयास किया लेकिन पौधों की रोपाई की, वो इतना सफल नहीं हो सकता है। अगर दिसम्बर में देवदार व राई के बीज बो दिये जांय तो बहुत सफल होगा। सुना है कि देवदार का बीज पकने से ३० से ६० दिनों के बाद समाप्त हो जाता है, उसे इसी बीच बो देना पड़ता है।

"पर्यावरण में तो अब काफी परिवर्तन हो गया है। पुराने जमाने में तो हमारा व्यवसाय ही इस प्रकार था कि हम बहुत व्यस्त रहते थे। लकड़ी (इंधन) के लिए पेड़-पौधे भी बहुत कटते थे। यहीं इन्टर कॉलेज में प्रधानाचार्य श्री चौहान जी हैं। इनके प्रयत्नों व महिला मंगल दल की सहायता से एक क्षेत्र में काफी अच्छे पेड़ पनप पाये हैं। इन्टर कॉलेज में भी सन् १९७० से ही वृक्ष लगाने का कार्यक्रम चलता आ रहा है। चमोली की महिलाओं ने भी काफी बड़े इलाके में पेड़ लगाये हैं।"

बिहारीलाल एक वृद्ध व अनुभवी गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता हैं जो कि बुढ़ाकेदार में अपना केन्द्र बना कर कार्यरत हैं। अपने अनुभव व ज्ञान के कारण, विकास व आत्मनिर्भरता के बारे में उनके विचार बहुत सुलझे हुए तथा पूरी तरह स्पष्ट हैं।

"यहां पर लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती तथा पशुपालन है। पशुपाल से हमें दूध, दही, घी, आदि चीज़े मिलती हैं, जिससे हम लोग अपना जीवन यापन करते हैं। मज़दूरी तथा होटल व्यवसाय भी लोग यहां किया करते हैं। पहले यह सब कुछ कम किया करते थे, लेकिन आज जबकि यातायात के साधन विकसित हो चुके हैं तो लोगों के जीवन यापन के साधन ठप्प हो चुके हैं। पहले लोग तीर्थ यात्रा के दौरान गांव के रास्ते आया करते थे, लेकिन अब तो लोगों का रोज़गार उस साधन से नहीं चल पाता है।

"पहले लोग स्वावलम्बी हुआ करते थे, क्योंकि यातायात के साधन न होने के कारण, उन्हें लगता था कि गेहूँ, दाल, धान आदि सभी अपने जीवन यापन हेतु खुद ही उत्पन्न करना है। अतः वे पूर्णतः खेती पर निर्भर हुआ करते थे। भेड़ पालन भी पहले लोगों का कार्य हुआ करता था। अतः कपड़ा प्रत्येक घर में बनाया जाता था। धागे की कताई से लेकर कपड़े की सिलाई तक सारे कार्य प्रत्येक घर में हुआ करते थे। लेकिन आज सब कुछ समाप्त हो चुका है।

"आज वन पंचायत की भूमि पर धीरे-धीरे सिविल फोरेस्ट की घेरबन्दी हो गयी है। अच्छी ज़मीन जो पहले थी वह अब बंजर हो चुकी है। अब लोग सिविल वन पर अतिक्रमण कर रहे हैं। घर की अच्छी ज़मीन को छोड़कर लोग सिविल वन की भूमि पर

मकान बना रहें हैं। ये जंगल अब करीब-करीब समाप्त हो चुके हैं और अब हमारा भार आरक्षित जंगल पर पड़ रहा है। आरक्षित वन की ऐसी व्यवस्था है कि हम अपने खेत के पेड़ को भी नहीं काट सकते। ...यदि मकान टूट जाता है तो भी अब लकड़ी नहीं मिल पाती। और अब आवश्यकता पड़ने पर लोग रात को जाकर पूरा पेड़ काट डालते हैं तथा उससे एक बल्ली निकालकर पेड़ वहीं छोड़ दिया करते हैं।

"अब यहां कारपेन्टर भी अपना धन्धा शुरू नहीं कर सकते हैं, क्योंकि चोरी की लकड़ी से वे अपना उद्योग नहीं चला सकते हैं। उनके पास कोई काम नहीं रह गया है, सरकार उन्हें लकड़ी देती ही नहीं है। अतः मकान बनाने में अब हम स्वावलम्बी नहीं हैं।

"मेरा यह कहना है कि यदि गोनगढ़ से सड़क आती है तो उससे क्या फायदा होगा ? सड़क आने से हमें तो नुकसान ही होगा। यहां से घास जायेगी, यहां से लकड़ी जायेगी, यहां से पत्थर कम हो जायेगें। सड़कों का महत्व तभी हो सकता है जबकी हम अच्छी-अच्छी सब्ज़ियां उगायेंगें, फल उगायेंगें। यहां जो रिंगाल होता है उसे उपयोग में लाकर टोकरियां आदि बनाये। यहां के जो सुन्दर पत्थर हैं उनसे विभिन्न प्रकार की वस्तुयें बनायें तथा उन्हें बाहर भेजें। लेकिन अगर हम कुछ न करना चाहें तो सडकों के आने का महत्व कुछ भी नहीं रह जाता है।

"हमारे सामने विकास की परिकल्पना स्पष्ट नहीं है। हमारे जीवन के लिए क्या चाहिए क्या वह हमारे पास है या नहीं? इस पर विचार नहीं किया जाता है। मुख्य रूप से आज जो भी उत्पादन किया जा रहा है उसका मूल उद्देश्य यह ही होता है कि अधिक धन कमाया

जाय। परन्तु अधिक अनाज पैदाकर इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं की जा सकती है। कपड़े की कताई-बुनाई तथा ऊन उधोगों से भी यह सम्भव नहीं है कि हम ऐश्वर्यशाली जीवन यापन कर सकें। मूल आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उत्पादन करके मनुष्य धनी नहीं बन सकता हैं। वह भोग-विलास के साधन जैसे कि टी.वी. आदि नहीं रख सकता है। लेकिन मानव का एक मात्र उद्देश्य यही रहता है कि किस प्रकार ऐसे साधन जुटाये जांय और अधिक से अधिक धन कमाया जा सके और इसी को अब लोग विकास मानते हैं।

"यदि पर्यावरण को हम जीवन से न जोडें तो पर्यावरण का जीवन की दुष्टि से कोई महत्व नहीं रह जाता है। यदि पर्यावरण को जीवन से जोडें तो हम आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन सकते है। प्र्यावरण की दुष्टि से हम यहां पर कपास उगा सकते हैं। यहां पर हम कपास की अच्छी किस्म–"वृक्ष कपास" का उपयोग कर सकते हैं जो कि कई सालों तक चलती है। अतः स्वावलम्बन की दृष्टि से यह अधिक उपयोगी है। इसी प्रकार ६००० फीट की ऊंचाई तक टसर की अच्छी खेती की जा सकती है। इस ऊंचाई पर बांज पाया जाता है। आप कहेगे कि टसर से बांज खराब होता है। लेकिन टसर का उपयोग हम सिविल वन व निजी खेती में कर सकते हैं। जो आरक्षित बाँझ का जंगल है, उसे क्यों ने हम एक-एक बीट पर टसर करें और उसे फिर पाँच-दस साल तक छोड़ दे और फिर दूसरे बीट पर टसर करें। इससे बांझ की प्रजातियाँ जो धीरे-धीरे समाप्त होती जो रही हैं, उनका लोंगो को पता चलेगा कि ये किस तरह से सीधे हमारे जीवन से जुड़ी है। शहतूत तो यहां पर होता है जिससे रेशम का कीड़ा निकाला जाता है। इसकी शाखायें लम्बी होती है, जो कि

टोकरियां आदि बनाने के कार्य में उपयोगी होती हैं। इसके पत्ते चारे के काम आते हैं, तथा इन पर रेशम की खेती की जा सकती है। अरण्डी भी यहां पर होती है। उसका भी यहां पर उपयोगा होता है। अतः वस्त्र स्वावलम्बन व पर्यावरण सम्वर्द्धन साथ-साथ चलाये जा सकते है।

"मुझे लगता है कि एक स्वस्थ या आदर्श गांव हेतु वहां पर उपलब्ध साधनों एवं आवश्यकताओं को देखते हुए कार्य करने की आवश्यकता है। हमको भोजन की दृष्टि से स्वावलम्बी होना ही चाहिए। वस्त्र की दृष्टि से भी हमें स्वावलम्बी बनना ही होगा। क्षेत्र की ज़रूरत एवं संसाधनों को मध्यनज़र रखते हुए यदि हम आत्म स्वावलम्बी, ग्राम स्वावलम्बी न बन सके तो हमें पारस्परिक स्वावलम्बी तो बनना ही होगा। मकान की दृष्टि, से भूकम्प को देखते हुए हमें छोटे-छोटे पत्थर के मकानों को प्राथमिकता देनी होगी, सीमेन्ट की अपेक्षा। यहां वन एंव कृषि आधारित उद्योग लगने चाहिए। जड़ी-बूटियों का उत्पादन स्थानीय स्तर पर, और रिंगल उघोग का नया स्वरूप हम खड़ा कर सकें। कुछ ऐसा स्वरूप हम बनायें जिससे ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को रोज़गार मिल सके। स्त्री को आर्थिक रूप से मज़बूत बनाने की आवश्यकता है। स्त्री-पुरूष को परस्पर सामंन्जस्य से साथ-साथ काम करना होगा। उद्योगों का कुछ ऐसा स्वरूप होना चाहिए जहां सब साथ-साथ कार्य कर सकें। शिक्षा का स्वरूप कुछ ऐसा होना चाहिए कि वह किताबी शिक्षा न हो कर ज़्यादा व्यावहारिक हो जिससे बच्चे रोज़गार-पूरक शिक्षा ग्रहण कर स्वावलम्बन की भावना ग्रहण कर सकें ऐसी ही कुछ कल्पना मेरे मस्तिष्क में है।"

मोहनलाल उनियाल के विकास संबधी विचार दूरदर्शितापूर्ण है। वे मानते है कि चिरंतर विकास तभी संभव है जबकि पहाड़ों में पाई जाने वाली प्राकृतिक जैव विविधता को भली प्रकार संभालकर रखा जाये।

"गांव में मुख्य आजीविका के साधन तो खेती-बाड़ी है। इसके बाद यहां पशुपालन भी है। और फिर थोड़ा बहुत लघु-कुटीर उधोग भी हैं, और कुछ लोग सर्विस पर भी हैं। नौकरी अब लोग करने लगे हैं। हमारी दृष्टि में पहाड़ों में आजीविका के लिये हमारी परम्परागत खेती-बाड़ी को पुनर्जीवित किया जाय तो वो ज़्यादा बेहतरीन है। हमारे पुराने जो बीज व खाद के तरीके थे, खेती-बाड़ी करने के, वो तो प्रायः नष्ट हो गये हैं। ...वैज्ञानिकों को एवं दूसरे लोगों को इसमें लगाया जाना चाहिए। पहले के जो उत्तम बीज व खाद थे वो प्रायः अब कमज़ोर पड़ गये हैं। उतने जीवनीय तत्व उनमें नहीं रहें हैं। पहले के भोजन में जीवनीय तत्व थे। अब जब से (रसायनिक) खाद का प्रचलन आया उसमें जीवनीय तत्व कम हो गए।

"यहां पर कृषि पर आधारित उद्योग अभी हैं नहीं, किन्तु लगाये जा सकते हैं। ख़ास करके मैं यह कहना चाहूंगा कि यहां घाटियों को छोड़कर, जो ऊंची जगह हैं, वहां कृषि के लिए इतनी उपयुक्त ज़मीन नहीं। वहां पर बागवानी का धन्धा ज़्यादा कारगर हो सकता है। यहां पर उद्यान लगाये जाने चाहिए। इनसे फल प्राप्त करके जैम, जैली और फल संरक्षण का तरीका कारगर सिद्ध हो सकता है। यहां के लोगों की समृद्धि में योगदान दे सकता है तथा आजीविका भी इससे बन

सकती है। बजाय कृषि के यहां जो है फलोद्यान यहां पर ज़्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए।

"पहाड़ में बेरोज़गारी को दूर करने के लिये कुटीर उद्योग और जो हमारी पुरानी परम्परायें थीं, जैसे मैंने अभी कहा कि विपणन के लिए आवागमन के साधनों को बढ़ाया जाय। इनमें बेरोज़गार लोगो को लगाया जा सकता है। या फिर उनको दूसरे काम दिये जा सकते हैं। जो कृषि आधारित धन्धें हों उन पर लगा कर रोज़गार दिया जा सकता है।

"जहाँ तक पहाड़ का सवाल है, यहाँ के लोगों का चहुमुखी विकास हम चाहते हैं। हमारी आकांक्षा है कि यहाँ के लोग समृद्ध हों, उन्नति करें और आदमी यहीं रहें, बाहर पलायन न हो, तो इसके लिये चार चीजों की आवश्यकता होनी चाहिए और इसी का डेवलपमेंट होना चाहिए। न. १ कि यहाँ पर रोटी, कपड़ा और मकान, इन तीन चीजों के सुलभ करने के उपाय किये जाने चाहिए। दूसरी बात है कि यहाँ की शिक्षा के लिये पर्याप्त संख्या में स्कूल खोले जाने चाहिए या शिक्षण-संस्थाएं खोली जानी चाहिए और शिक्षण-संस्थाएं भी सिर्फ एकेडमिक शिक्षा ही नहीं बल्कि जो व्यावसायिक शिक्षा है उसके भी केन्द्र खोले जाने चाहिए। जहाँ जिसकी रूचि हो वहीं यहाँ के नौनिहालों को यदि भेजा जायेगा तो निसंदेह यहाँ का विकास होना संभव है। ख़ास करके यहाँ का पलायन रूकना चाहिए। यहाँ पर उद्योग-धन्धें स्थापित किये जाने चाहिए। यहाँ के वनों का संरक्षण किया जाना चाहिए। यहाँ की जलवायु का संरक्षण किया जाना चाहिए और यहाँ के जो नदी, पर्वत, मनोरम घाटियां, सुरम्य स्थल हैं उनकी सुरक्षा की जानी

चाहिए। और वो तभी संभव है जब कि सरकार, कुछ सामाजिक संस्थाएं और जनता मिलकर इस बड़े बड़े कार्य को करें तभी यहाँ की समृद्धि हो सकती है। यही हमारी कामनायें हैं।

"हम कहना चाहेंगे कि विकास तो होना चाहिए लेकिन वो यहाँ की संस्कृति के आधार पर होना चाहिए। यहां पर आप गीत-गाने बाहर से लाओगे तो शायद यहाँ के लोगों को सूट नहीं (विपरीत) होंगे! तो उसका परिणाम ठीक नहीं होगा!

"हम तो चाहते हैं कि मानव का चहुमुखी विकास हो जिससे मतलब उसके शरीर का विकास हो, उसकी बुद्धि का विकास होए, उसके चारों ओर जो पर्यावरण है उसका संरक्षण और विकास होए, इसका नाम है डेवलपमेंट। डेवलपमेंट एक खेत को बना देना या एक सड़क बना देने का नाम थोड़े ही है!"

हिमालय के वन उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों के प्रहरी हैं। यहाँ की विशाल वनस्पति व जीवन ही इस देश की असली सम्पति है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वन कटने से रेगिस्तान साथ-साथ बढ़ते है और इससे पूरी की पूरी संस्कृति व सभ्यता विलुप्त हो सकती है।

आधुनिक मशीनी व वैज्ञानिक युग में प्रकृति का सर्वनाश कुछ ही क्षणों में सभंव है। हिमालय के वनों का जो संकट है उससे साधारण व्यक्ति भी चिंतित है। बिना सोच-विचार के बनाये गये सरकारी कानून उनके दैनिक जीवन पर बुरी तरह आघात कर रहे हैं।

इन समस्याओं का समाधान स्पष्ट है। जिन व्यक्तियों का जीवन इस ज़मीन, धरती से जुड़ा है वे जोर से व साफ तौर पर आवाज उठा रहे हैं। प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन करने के लिए समुदायों को अधिकार देना, उन्हें सशक्त

बनाना, अपने जीवन की योजनाओं में लोगों का हिस्सा होना, स्थानीय कारीगरी व निपुणता को अवसर प्रदान करना, उनके काम के अनुसार रोजगार के अवसर प्रदान करना और पवित्रता का संरक्षण करना, ये सब पहाड़-वासियों की इस पीढ़ी के सपने व आशाएँ है। परन्तु ये देख रहे हैं कि किस प्रकार उनकी पुरानी दुनिया लुटती जा रही है और किस प्रकार वे प्रलोभनों व हवस पर आधारित आधुनिक सभ्यता के शिकार बन रहे हैं।

बहुत से लोगों के लिए चिपको कवि, घनश्याम सैलानी का वह गीत–*'चिफला ढुंगो मती कि फली से'*–जिसमें हिमालय क्षेत्र की सुन्दरता व समृद्धि का जिक्र किया गया है, वह ही उनके भावों की भी अभिव्यक्ति करता है। इसके कुछ अंश निम्नलिखित हैं:

हरचि कख गढ़वाल कू वो कोदू कंडाली?
गोल गफा बण्यां रंदा था जैन गढ़वाली।
मोल था बमोर पक्यां
डाला झकाझोर झुक्यां
क्ना दिन था तबारी
कुछ नि थै कै दुख बिमारी
काफल किनगोड़ खाई लोण रालि राली।
साग छौ चलू बड़यालू
दमड़ा मा लेंगडू कुथैल्डू
कोदा झंगोरा कि सारी
छानि मुंग भैंसी लैरी
छांसि का परोठा खाया झंगोरा मा राली।

हम उन सभी व्यक्तियों के आभारी हैं जिनके सहयोग व रूचि के कारण ही ये साक्ष्य इस पुस्तक में संकलित किये जा सके और उनके भी जिनको हम अपने भविष्य में प्रकाशित पुस्तकों में शामिल करने की योजना बना रहे हैं।

1. लकूपति
   ग्रामः छोड़ा
   निचार
   किन्नौर

2. मोहन लाल उनियाल
   चम्बा
   हेवंल घाटी
   टिहरी गढ़वाल

3. शांति देवी
   ग्रामः डुण्डा-बगोरी
   भागीरथी घाटी
   उत्तरकाशी

4. भगत राम नेगी
   ग्रामः चाँसू
   संगला घाटी
   किन्नौर

5. विजय जड़ धारी
   ग्रामः जड़धार गाँव (नागणी)
   हेवंल घाटी
   टिहरी गढ़वाल

6. बचनी देवी
   ग्रामः आदवाणी
   हेवंल घाटी
   टिहरी गढ़वाल

7. जलमा देवी
   ग्रामः कोटियाल्ड
   भागीरथी घाटी
   उत्तरकाशी

8. सदर सिंह परमार
   ग्रामः सर्प
   भागीरथी घाटी
   उत्तरकाशी

9. सुदेशा देवी
ग्रामः रामपुर
हेवंल घाटी
टिहरी गढ़वाल

10. रामचन्द्री देवी
ग्रामः पाटा
भागीरथी घाटी
उत्तरकाशी

11. असूजी देवी
ग्रामः विसोई
जौनसार
यमुना घाटी
देहरादून

12. अतरदेई
ग्रामः सुनारा
रवांई
यमुना घाटी
उत्तरकाशी

13. सत्ये सिंह
ग्रामः गोनी
अलकनन्दा घाटी
टिहरी गढ़वाल

14. टौंखो देवी
ग्रामः लाखामण्डल
यमुना घाटी
देहरादून

15. जगत सिंह चौधरी, 'जंगली'
ग्रामः कोट मल्ला
अलकनन्दा घाटी
चमोली

16. कालसा राम सेमवाल
ग्रामः ऋषिधार
बाल गंगा घाटी
टिहरी गढ़वाल

17. तेग सिहं महन्त
ग्रामः बिलोग (कुठाल्डी)
भागीरथी घाटी
उत्तरकाशी

18. अवतार सिहं नेगी
ग्रामः कुमाली
हेवल घाटी
टिहरी गढ़वाल

19. बचनदेई
ग्रामः धरवाल गाँव
भागीरथी घाटी
टिहरी गढ़वाल

20. उमराव सिंह रावत
ग्रामः देवल कोट
पिन्डर घाटी
चमोली

21. देवकी
ग्रामः बिजार-कैलाशपुर
नन्दाकिनी घाटी
चमोली

22. हीरा देवी
ग्रामः वौंणा-ममसाली
नन्दाकिनी घाटी
चमोली

23. राधाकृष्ण सेमवाल
ग्रामः ख्वाड़ा
बाल गंगा घाटी
टिहरी गढ़वाल

24. यगजंग
ग्रामः डुण्डा-हर्षिल
भागीरथी घाटी
उत्तरकाशी

25. इन्द्र सिंह फोनिया
ग्रामः घमसाली
अलकनन्दा घाटी
चमोली

26. मालमंती
ग्रामः डार्गी
हेंवल घाटी
टिहरी गढ़वाल

27. विमला देवी
ग्रामः कुडी
हेवल घाटी
टिहरी गढ़वाल

28. चतर सिंह भण्डारी
ग्रामः भेलगण्डी
मन्दाकिनी घाटी
टिहरी गढ़वाल

29. चतरा देवी
ग्रामः भेलगण्डी
मन्दाकिनी घाटी
टिहरी गढ़वाल

30. विशाल मणी झल्डियाल
ग्रामः डोब
भागीरथी घाटी
टिहरी गढ़वाल

31. इन्द्र मणी
ग्रामः वेलकण्डी
भागीरथी घाटी
टिहरी गढ़वाल

32. जीत राम डबराल
ग्रामः मातली
हेंवल घाटी
टिहरी गढ़वाल

33. सावित्री देवी
ग्रामः साबली
हेंवल घाटी
टिहरी गढ़वाल

34. नारायण सिंह रावत
ग्रामः इदियान
भागीरथी घाटी
टिहरी गढ़वाल

35. विमला बहुगुणा
पर्वतीय नव जीवन आश्रम
ग्रामः सिल्यारा
बालगंगा घाटी
टिहरी गढ़वाल

36. विश्वेश्वर दत्त सकलानी
ग्रामः पुजार गाँव सकलाना
टिहरी गढ़वाल

37. धूम सिंह रावत
ग्रामः चन्द्रा दुंगी
अलकनन्दा घाटी
चमोली

38. बिहारी लाल
ग्रामः बूढ़ाकेदार
बाल गंगा घाटी
टिहरी गढ़वाल

साक्षात्कारकर्ता

1. देवेन्द्र बहुगुणा
   सामाजिक कार्यकर्ता, गढ़वाल
2. उमा भट्ट
   स्कूल शिक्षिका/अध्यापिका,
   गढ़वाल
3. अनीता नोटियाल
   विद्यार्थी, गढ़वाल
4. कुसुम रावत
   सामाजिक कार्यकर्ता, गढ़वाल
5. राजेन्द्र बहुगुणा
   स्कूल शिक्षक/अध्यापक,
   गढ़वाल
6. प्रताप सिहं बिष्ट 'संगरश'
   उच्च विद्यालय
   उपदेशक, गढ़वाल
7. खेम राज मिश्रा
   वकील, गढ़वाल
8. सदन मिश्रा
   सामाजिक कार्यकर्ता, कुमाऊँ
9. रमिला नेगी
   विद्यार्थी, किन्नौर
10. उपेन्द्र नेगी
    विद्यार्थी, किन्नौर
11. वन्दना नेगी
    सामाजिक कार्यकर्ता, किन्नौर